जैन पर्व और उसकी सामाजिक उपयोगिता

—कुंवर परितोष प्रचण्डिया
(एम० काम०, रिसर्च स्कॉलर)

मनुष्य समाज की बुद्धिमान इकाई है। उसमें धर्म और समाज का स्वरूप अन्तर्व्याप्त रहता है। उसकी अन्तश्चेतना को अनुप्राणित करने के लिए अनेक पर्व और त्यौहारों का आयोजन होता है। पर्व में धार्मिकता और त्यौहार में सामाजिकता का प्राधान्य रहता है। जन-जीवन में आत्मविश्वास, उत्साह तथा क्रियान्वयता का संचार पर्व अथवा त्यौहार द्वारा किया जाता है। पर्व अथवा त्यौहार धर्म और समाज के अन्तर्मानस की सामूहिक अभिव्यक्ति है।

किसी जिज्ञासु ने अमुक धर्म अथवा समाज की आधारभूत पृष्ठभूमि जानना चाही तो साधक ने उत्तर देते हुए कहा कि धर्म अथवा समाज के अन्तर्मानस को जानने के लिए उनसे सम्बन्धित पर्व अथवा त्यौहार को जान लेना परम आवश्यक है। प्रत्येक धर्म के शास्त्र-सिद्धान्त और सामाजिक प्रतीकात्मकता पर्व अथवा त्यौहार से विद्यमान रहती है।

जिनधर्म और समाज तथा संस्कृति पर आधृत अनेक पर्वों और त्यौहारों का उल्लेख प्राचीन वाङ्मय में उपलब्ध है। जैन भी वर्ष के किसी न किसी दिन को पर्व का रूप देकर अपने धार्मिक, सांस्कृतिक स्वरूप का साक्षात्कार करता है।

जैनपर्व जिनधर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके आयोजनों में मात्र खेल-कूद, आमोद-प्रमोद; भोग-उपभोग अथवा सुख-दुःख का संचार नहीं होता अपितु वे हमारे जीवन में तप, त्याग, स्वाध्याय, अहिंसा, सत्य, प्रेम तथा मैत्री की उदात्त भावनाओं का प्रोत्साहन और जागरण करते हैं। पर्वों को मूलतः दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। यथा—

१—धार्मिक २—सामाजिक

जिनधर्म पर आधृत धार्मिक पर्वों में संवत्सरी, पर्युषण, आयम्बिल अष्टान्हिका, श्रुतपंचमी आदि उल्लेखनीय हैं जबकि सामाजिक पर्वों में महावीर जयन्ती, वीर-शासन जयन्ती, दीपावलि तथा सलूनों अर्थात् रक्षाबंधन, मौन एकादशी आदि उल्लेखनीय हैं। यहाँ इन्हीं कतिपय पर्वों—उत्सवों का इस प्रकार उल्लेख करना हमें ईप्सित है ताकि उनका रूप—स्वरूप मुखर हो उठे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवत्सरी—संवत्सरी-पर्युषण को पर्व ही नहीं अपितु पर्वाधिराज की महिमा प्रदान की गई है। शास्त्रों के अनुसार पर्युषण के दिनों में से आठवें दिन संवत्सरी को धर्म का सर्वोच्च स्थान, महिमा तथा मूल्य दिया जाता है। आषाढ़—पूर्णिमा से पचास दिन पश्चात् अर्थात् भाद्र शुक्ला पंचमी को संवत्सरी पर्व का आयोजन किया जाता है। इस पर्व को तीर्थंकर महावीर, गौतमस्वामी, आचार्य, उपाध्याय तथा श्रीसंघ द्वारा मनाए जाने का उल्लेख कल्पसूत्र में उपलब्ध है। आत्मशुद्धि के इस महान पर्व की रात को किसी भी प्रकार से उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

संवत्सरी के आठ दिवसों का अनुष्ठान पर्युषण कहलाता है। साधुओं के लिए दश प्रकार का कल्प अर्थात् आधार कहा गया है उसमें एक पर्युषणा भी है। परि अर्थात् पूर्ण रूप से उषणा अर्थात् बसना। अर्थात् एक स्थान पर स्थिर रूप से वास करने को पर्युषणा कहने हैं। पहले यही परम्परा प्रचलित थी कि कम से कम ७०, अधिक से अधिक छह महीने और मध्यम चार महीने। कम से कम सत्तर दिन के स्थिरवास का प्रारम्भ भाद्र सुदी पंचमी से होता है। कालान्तर में कालिकाचार्य जी ने चौथ की परम्परा संचालित की। उसी दिन को संवत्सरी पर्व कहते हैं। आठ दिवसीय आत्मकल्याण का महापर्व कहलाता है पयुर्षण। संवत्सरी और पर्युषण में इतना ही अन्तर है कि संवत्सरी आध्यात्मिक साधना-क्रम में वर्ष का आखिरी और पहले दिन का सूचक है, जबकि पर्युवरण है तप और त्याग—साधना का उद्बोधक। इस प्रकार संवत्सरी का अर्थ अभिप्राय है वर्ष का आरम्भ और पर्युषण का प्रयोजन है कषाय का उपशम, आत्मनिवास तथा वैराग्य भावना का चिन्तवन।

संवत्सरी के सायं प्रतिक्रमण के अवसर पर प्रत्येक जिन-धर्मी को चौरासी लाख जीवायोनि से मन, वचन से तथा काया से क्षमायाचना करनी पड़ती है। इससे परस्पर में मिलन, विश्व मैत्री, तथा वात्सल्य भावना मुखर हो उठती है। यही इस पर्व का मुख्य प्रयोजन है।

दिगम्बर समुदाय में इसे दशलक्षश धर्म के नाम से मनाया जाता है। इसमें धर्म के दश लक्षणों—उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य तथा ब्रह्मचर्य—का चिन्तवन किया जाता है। यहां यह पर्व भाद्र शुक्ला पंचमी से प्रारम्भ होकर भाद्र शुक्ला चतुर्दशी तक चलता है। अन्त में क्षमावाणी पर्व के रूप में मनाया जाता है जिसमें विगत में अपनी असावधानीवश किसी के दिल को किसी प्रकार से दुखाया हो तो उसकी परस्पर में क्षमा यावना करते हैं। इसकी उपयोगिता अपनी है और आज के राग-द्वेषपूर्ण वातावरण में इस प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन और उनकी उपयोगिता असंदिग्ध है।

अष्टान्हिका पर्व तथा आयंबिल—ओली पर्व

दिगम्बर समुदाय में यह पर्व वर्ष में तीन बार मनाया जाता है। क्रमशः कार्तिक, फाल्गुन तथा आषाढ़ मास के अंत के आठ दिनों में इस पर्व का आयोजन हुआ करता है। जिन धर्म में मान्यता है कि इस धरती पर आठ नन्दीश्वर द्वीप हैं। उस द्वीप में बावन चैत्यालय हैं। वहां मनुष्य की पहुँच नहीं हो पाती, केवल देवगण ही आया-जाया करते हैं। अस्तु इन दिनों यहाँ पर ही पर्व मनाकर उनकी पूजा करली जाती है। इन दिनों सिद्धचक्र पूजा विधान का भी आयोजन किया जाता है। इसकी भक्ति और महिमा अनंत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्वेताम्बर समुदायों में यह पर्व वर्ष में दो बार ही मनाया जाता है। चैत्र आसोज में सप्तमी से पूर्णिमा तक नौ दिन आयंबिल तप की साधना की जाती है। आयंम्बिल तप का अर्थ अभिप्राय है—आम्लरस से रहित भोजन जिसमें रस, गंध, स्वाद, घृत, दुग्ध, छाछ आदि का सेवन नहीं किया जाता है। दर असल यह अस्वाद—साधना का महापर्व है। इससे जीवन में तप और संयम के संस्कार जाग्रत होते हैं।

श्रुत पंचमी

श्रुत पंचमी कार्तिक शुक्ला पंचमी को मनाई जाती है। इस अवसर पर श्रुताराधना और श्रुत-ज्ञान के प्रति अटूट निष्ठा तथा विनय प्रकट करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है।

दिगम्बर परम्परा में मान्यता है कि धीरे-धीरे अंग ज्ञान लुप्त हो गया तो अंगों और पर्वों के एक देश के ज्ञाता आचार्य धरसेन हुए। उनकी प्रेरणा से उनके पास दो मुनिराज पधारे जिन्हें सिद्धान्त पढ़ाया और पारंगत किया। इन मुनिराजों के नाम थे पुष्पदंत और भूतबलि।

इन द्वय मुनियों ने एक सिद्धान्त ग्रंथराज की रचना की जिसका नाम था षट्खण्डागम। आचार्य भूतबलि ने ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को चतुर्विध संघ के साथ इस ग्रंथराज की पूजा की। यह पर्व सभी से मनाया जाने लगा है। श्वेताम्बर समुदाय में यह पर्वराज कार्तिक शुक्ला पंचमी को मनाया जाता है जिसे ज्ञान पंचमी भी कहा जाता है। ग्रंथों की पूजा-अर्चना के साथ उनकी सफाई व्यवस्था पर पूरा ध्यान दिया जाता है। इस पर्व से दोनों ही समुदाय में स्वाध्याय की प्रेरणा प्राप्त होती है।

महावीर जयन्ती

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन महाश्रमण भगवान् महावीर की जन्म जयन्ती के रूप में महोत्सव श्वेताम्बर और दिगम्बर समुदाय में बड़े हर्ष—उल्लास के साथ मनाया जाता है। इस अवसर पर आम सभाएँ आयोजित की जाती हैं जिसमें अधिकारी जैन-जैनेतर विद्वानों द्वारा तीर्थंकर महावीर भगवान् के उपदेश का विवेचन किया जाता है तथा आधुनिक संदर्भों से उनकी उपयोगिता पर विचार किया जाता है। आज के जीवन में अहिंसा और अनेकान्त के द्वारा ही अमन चैन की कल्पना साकार हो सकती है। यह धारणा केवल जैनों की ही नहीं है। विश्व के महान विचारकों और साधकों की धारणा है।

उल्लेखनीय बात यह है कि इस दिन पूरे देश में राजकीय आज्ञा में अवकाश तो रहता ही है साथ ही सारे कट्टीखाने तथा मांस की दुकानों को बन्द कर दिया जाता है। प्रभात-फेरियां तथा मिष्ठान वितरण कर हर्ष मनाया जाता है। बहुत से स्थानों पर हस्पतालों में रोगियों को फल तथा कालिज के छात्रों में मिष्ठान वितरण भी कराया जाता है। जैन भाइयों के व्यापारिक संस्थान प्रायः बन्द रहा करते हैं।

दीपावलि

श्वेताम्बर और दिगम्बर समुदाय में महावर्व दीपावलि का आयोजन तीर्थंकर महावीर के निर्वाण हो जाने पर मनाया जाता है। आगमों और पुराणों में इसका विस्तारपूर्वक उल्लेख उपलब्ध है। महाश्रमण महावीर के निर्वाण के समय नव लिच्छवि और नव मल्लि राजाओं ने प्रोषधव्रत कर रखा था। कार्तिक कृष्ण अमावस्या के दिन रात्रि के समय भगवान मुक्ति को प्राप्त हुए। उस समय राजाओं ने आध्यात्मिक ज्ञान के सूर्य महावीर के अभाव में रत्नों के प्रकाश से उस स्थान को आलोकित किया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम्परागत उसी प्रकार जनता दीप जला-जलाकर उस परम ज्ञान की वंदना-उपासना करती है और प्रेरणा प्राप्त करती है।

हरिवंश पुराण के अनुसार भगवान् भव्य जीवों को उपदेश देते हैं और पावानगरी में पधारते हैं। यहां एक मनोहर उद्यान में चतुर्थ काल की समाप्ति में तीन वर्ष आढ़े आठ मास शेष रह गए थे, कार्तिक अमावस्या के प्रातः योग का निरोध करके कर्मों का नाश करके मुक्ति को प्राप्त हुए। देवताओं ने आकर उनकी पूजा की और दीपक जलाए। उस समय उन दीपकों के प्रकाश से सारा क्षेत्र आलोकित हो उठा। उसी समय से भक्तगण जिनेश्वर की पूजा करने के लिए प्रति वर्ष उनके निर्वाण दिवस के उपलक्ष्य में दीपावलि मानते हैं।

महामनीषी पण्डित कैलाशचन्द्र जी शास्त्री के अनुसार, दीपावलि के पूजन की जो पद्धति है, उससे भी समस्या पर प्रकाश पड़ता है। दीपावलि के दिन क्यों लक्ष्मी पूजन होता है इसका सन्तोषजनक समाधान नहीं मिलता। दूसरी ओर जिस समय भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ उसी समय उनके प्रधान शिष्य गौतम गणधर को पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हुई। गौतम जाति के ब्राह्मण थे। मुक्ति और ज्ञान को जिनधर्म में सबसे बड़ी लक्ष्मी माना है और प्रायः मुक्तिलक्ष्मी और ज्ञानलक्ष्मी के नाम से ही शास्त्रों में उनका उल्लेख किया गया है। अतः सम्भव है कि आध्यात्मिक लक्ष्मी के पूजन की प्रथा ने धीरे-धीरे जन समुदाय में बाह्य लक्ष्मी के पूजन का रूप धारण कर लिया हो। बाह्यदृष्टिप्रधान मनुष्य समाज में ऐसा प्रायः देखा जाता है। लक्ष्मी पूजन के समय मिट्टी का घरौंदा और खेल-खिलौने भी रखे जाते हैं। दरअसल ये घरौंदा और खेल-खिलौने भगवान् महावीर और उनके शिष्य गौतम गणधर की उपदेश सभा की यादगार में हैं और चूँकि उनका उपदेश सुनने के लिए मनुष्य, पशु, पक्षी सभी जाते थे अतः उनकी यादगार में उनकी मूर्तियाँ-खिलौने रखते हैं।

मन्दिरमार्गी जिनधर्मी प्रातः लाडू चढ़ाते हैं जो भगवान् के समवशरण का ही प्रतीक है। प्रसन्नता होने के कारण समाजी परस्पर में मिष्ठान भेंट करते हैं, खाते हैं और खिलाते हैं।

सलूनो अर्थात् रक्षा बन्धन

यह पर्व आज पूरे देश में बड़े मनोयोग के साथ मयाया जाता है। ब्राह्मण जन यजमान के हाथों में रखी बांधते समय निम्न श्लोक का वाचन करते हैं। यथा—

येन बद्धो बली राजा, दानवेन्द्रो महाबली।
तेन स्वामपि बध्नामि रक्षे ! मा चल मा चल ॥

अर्थात् जिस राखी से दानवों का इन्द्र महाबली बलिराजा बांधा गया उससे मैं तुम्हें बांधता हूँ, अडिग और अडोल होकर मेरी रक्षा करो। इतने भर से इस त्यौहार के विषय में कोई ठोस प्रमाण अथवा विवरण प्राप्त नहीं होता। वामनावतार के प्रसंग में बलिराजा की कहानी अवश्य प्रचलित है किन्तु इससे रक्षाबन्धन के विषय में कोई स्पष्ट जानकारी अथवा प्रबोध नहीं होता। जैन-साहित्य में इस पर्व के विषय में अवश्य चर्चा मिलती है। कहते हैं कि जैन साधुओं से घृणा और द्वेष रखने वाले वलि को महाराजा पद्म से सात दिवसीय राज्याधिकार प्राप्त हो गया था। आचार्य अकम्पन संयोगवश उधर से होकर निकल रहे थे, उनके साथ सात सौ शिष्यों का विशाल कुल भी था। बलि को प्रतिशोध लेने का सुयोग प्राप्त हो गया। उसने पूरे मुनिसंघ को बन्दीगृह में डाल दिया और उनका नरमेध-यज्ञ में बलि देने का निश्चय करने लगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे संकटकाल में मुनिराज विष्णुकुमार से प्रार्थना की गई। वे वैक्रिय शक्ति सम्पन्न थे। संघ पर अनाहूत आगत संकट का मोचन कीजिए, ऐसी प्रार्थना की गई। तप-आराधना में लीन मुनिराज ने जब यह ज्ञात किया तो तुरन्त मुनिजनों की रक्षार्थ अपनी स्वीकृति दे दी और चलने के लिए सन्नद्ध हो गए। नगर में आकर वे अपने भाई पद्मराज से अनर्थ से मुक्त होने के लिए प्रार्थना करने लगे। यहां की परम्परा के अनुसार यहां सदैव संतों का सम्मान होता आया है किन्तु अपमान कर इस महाकुकृत्य से अपने को पृथक रखिए।

महाराजा पद्मराज वचनबद्ध होने से अपनी विवशता को व्यक्त करने लगा। विष्णुकुमार जी बलि के पास जाकर मुनि संघ के लिए स्थान की याचना करने लगे। बलि ने उन्हें ढाई पग दिए और कहा कि इसमें ठहर जाइए। इस पर मुनि को आक्रोश पैदा हुआ और उन्होंने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया। एक पैर सुमेरु पर्वत पर रखा और दूसरा मानुषोत्तर पर्वत पर तीसरा बीच में लटकने लगा। इस आश्चर्यजनक घटना को देखकर लोग स्तब्ध रह गए। बलि ने क्षमा मांगी और इस प्रकार आगत संकट टल गया। उधर लोगों ने मुनिजनों पर संकट आता देखकर अन्न-जल त्याग कर दिया था। जब मुनिजन लौटकर नहीं आए तो उन सबका आहार लेना सम्भव नहीं हुआ। अन्त में मुनियों को मुक्त किया गया और वे सात सौ घरों में आहार हेतु चले गए। साथ ही शेष घरों में श्रमणों का स्मरण कर प्रतीक बनाकर गृहपतियों ने भोजन किया। अतः इसी दिन से रक्षाबन्धन पर दीवालों पर मनुष्याकार चित्र बनाकर राखी बांधने की प्रथा चल पड़ी जिसका आज भी उत्तर भारत में 'सौन' शब्द से इस प्रथा का प्रतीकार्थ लिया जाता है। यहाँ 'सौन' शब्द श्रमण का अपभ्रंश शब्द है। इस मान्यता की परिपुष्टि महापण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री स्वरचित 'जैनधर्म' नामक कृति में करते हैं।

मौन एकादशी

मौन का अर्थ है—वाणी का, वचन का निग्रह अर्थात् न बोलना। मानव के पास तीन शक्तियाँ हैं—मन की शक्ति, वचन की शक्ति और शरीर की शक्ति। शरीर की शक्ति से वचन की शक्ति अधिक है और मन की शक्ति वचन की शक्ति से भी अनेक गुनी प्रचण्ड है। आज का वैज्ञानिक मौन की महत्ता स्वीकारता है। उसका मानना है कि बोलने से मस्तिष्कीय शक्ति अधिक खर्च होती है जिससे वह अविलम्ब थक-चुक जाता है। अतएव मनुष्य को कम बोलना चाहिए। मौनव्रती बौद्धिक काम करने में, ध्यान आदि में अधिक समर्थ होता है। व्यावहारिक रूप से भी वाचालता से अनेक हानियाँ होती हैं। अध्यातम में मौन का अपना महत्व है। मौन तो मुनि का लक्षण है। साधक बिना प्रयोजन वाणी की शक्ति को व्यर्थ व्यय नहीं करता। तन का मौन है—अधिक शारीरिक प्रवृत्ति न करना, स्थिर आसन रखना। मन का मौन है संकल्प-विकल्पों का त्याग, उनमें मन को न भरमाना। लेकिन मन है जो कि रिक्त नहीं रह सकता। कुछ न कुछ उछल-कूद करता ही रहता है। इसके लिए मन को शुभ विचारों से, प्रभु के गुणों के स्मरण से ओत-प्रोत कर देना चाहिए।

एकादशी का शाब्दिक अर्थ है ग्यारह की संख्या। आपके पास भी मन, वचन, काय के ग्यारह योग हैं। चार मन के, चार वचन के और तीन काया के (औदारिक, तैजस् और कार्मण)। इन ग्यारह का संयमन, नियमन और निग्रह ही मौन की पूर्ण साधना है। यही मौन एकादशी का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहस्य है। श्री रतनमुनिजी "पर्व की प्रेरणा" कृति में मौन एकादशी के विषय में एक संवाद प्रस्तुत करते हैं—यथा—एक श्रेष्ठी ने पंचमहाव्रतधारी धर्मगुरु से जिज्ञासा की "भगवन ! मैं गृहकार्य में उलझा रहता हूँ। अस्तु धर्म साधना करने की शक्ति नहीं है। आप मुझे ऐसी साधना बताइए कि एक दिन की साधना से ही पूरे वर्ष की धर्म-साधना का पुण्य-फल प्राप्त हो सके।"

गुरु ने कहा—"श्रेष्ठीवर ! मार्गशीर्ष मास की शुक्ला एकादशी के दिन उपवासपूर्वक पौषध व्रत धारण करने और मौन रहने से तुम्हें इच्छित फल प्राप्त हो सकता है। इस दिन भगवान मल्लिनाथ का जन्म कल्याणक है। यदि ग्यारह वर्ष तक विधिपूर्वक साधना करते रहे तो मोक्ष की प्राप्ति भी सम्भव है।"

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय पर्व-परम्परा में जैन-पर्वों का अपना अस्तित्व है और है अपना महत्व। इन पर्वों का मूल विषय जिन-धर्म, संस्कृति तथा सदाचार का प्रवर्तन करना रहा है। इसलिए इनके आयोजनों में आमोद-प्रमोद के साथ-ही-साथ कल्याणकारी ज्ञानवर्द्धक प्रसंग और सन्दर्भों का अपना स्थायी महत्व है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में ही उसका जीवन उल्लास और विकास से भर सकता है। पर्व अथवा त्यौहार समाज सापेक्ष होते हैं। इस प्रकार पर्व मानवी जीवन में जहाँ एक ओर सत्य धर्म का स्रोत प्रवाहित करते हैं वहाँ दूसरी ओर वे जीवन में चेतना और जागरण का संचार भी करते हैं। सामान्यतः संसारी प्राणी लोभ और प्रमादपूर्ण जीवन चर्या में लीन हो जाता है किन्तु पर्वों के शुभ आगमन से प्राणी को उन्मार्ग से हटकर सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

मनुष्य के पुरुषार्थ की सार्थकता है उत्तरोत्तर उत्कर्षोन्मुख होते जाना। पर्व उसके उत्कर्ष में कार्यकारी भूमिका का निर्वाह करते हैं। पुराण अथवा प्राचीन वाङ्मय में अन्तर्भुक्त घटनाओं और जीवन चक्रों से अनुजीवी पर्वों के प्रयोजन मनुष्य में मूर्च्छा-मुक्त जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। यदि पर्वों के द्वारा मनुष्य में मनुष्यता जागने लगे तो इससे अधिक उपयोगिता और क्या हो सकती है ?

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org